जनसत्ता
रविवारी
• 1 नवंबर 2015 •

पानी कितना पानी है

पूरे देश में शुद्ध पेयजल को लेकर संकट गहराता जा रहा है। कुछ इलाकों में भूजल का स्तर इतना नीचे चला गया है कि वहां से पलायन हो रहा है तो कहीं बाढ़ की विभीषिका से लोग तबाह हैं। हाल के बरसों में, बाजारवादी शक्तियों ने पानी को एक पण्य-वस्तु बना दिया है, जिससे समस्या और बढ़ गई है। पानी को लेकर एक नए किस्म की सियासत भी उभरी है। इन सभी बिंदुओं को समेटते हुए प्रस्तुत है रुचिश्री की पड़ताल।

हाल के वर्षों में पानी को लेकर जल के वितरण को न सिर्फ दो मुल्कों या दो राज्यों, बल्कि व्यक्तियों और समुदायों के बीच तनाव और झगड़े बढ़े हैं। पड़ोसियों के बीच लड़ाई तो आम बात हो गई है। पिछले साल दिल्ली और मथुरा में पानी के झगड़े में लोगों के घायल होने और जान जाने की घटनाएं सामने आई हैं। महाराष्ट्र का मराठावाड़ा क्षेत्र पानी की विकट समस्या से जूझ रहा है। भारत में ही कई राज्यों में पानी की वजह से विस्थापन हो रहा है। लोग कम पानी वाले गांवों में अपनी बेटी का ब्याह नहीं करना चाहते। पंजाब में भूजल के अत्यधिक दूषित होने से कैंसर रोगियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है।

दूसरी तरफ जल संबंधी विचारों के लिए नई शब्दावली बन रही है, जिसमें जल एटीएम, काल्पनिक जल, जल खनन, जल मूल्य निर्धारण, जल लेखापरीक्षण, जल पद्चिह्न आदि शामिल हैं। यह स्थिति एक नए समाज की ओर इशारा कर रही है, जहां पानी रसायन विज्ञान से ज्यादा राजनीति विज्ञान की वस्तु होता जा रहा है। पानी की राजनीति, असल में पानी पर दावेदारी को लेकर है। इसका असर, अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय और स्थानीय- तीनों स्तरों पर देखा जा सकता है। प्राकृतिक संसाधनों- जैसे जल, जंगल, जमीन, पहाड़ आदि के प्रमुख दावेदार कौन हैं? इसको लेकर दुनिया भर में विवाद शुरू हो गए हैं। राज्य, समुदाय, बाजार, बहुराष्ट्रीय कंपनियां, नागरिक, आदिवासी आदि तमाम इकाइयां इस अपनी दावेदारी जता रही हैं। एक तरह से देखा जाए तो 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' जैसी कहानी शुरू हो गई है। सब अपनी दावेदारी को तर्कसंगत बताने में लगे हैं। किसकी दावेदारी कितनी है, सारा टंटा इसी को लेकर है।

प्राकृतिक संसाधनों की राजनीति को लेकर चल रही बहस में अगर हम भारत को विश्व के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखें तो तीन तरह का नजरिया सामने है। पहला, जल को जीवन का अभिन्न हिस्सा मानना। यह नजरिया प्राचीन धर्मग्रंथों, गांधी-विनोबा के विचारों आदि से प्रेरित है, जो मानता है कि प्राकृतिक संसाधन- खासकर जल साझी संपत्ति है। यह सामूहिक चेतना पर आधारित है। पानी के साथ आध्यात्मिक जुड़ाव भी है।

दूसरा, प्राकृतिक संसाधनों को सामाजिक-आर्थिक वस्तु के तौर पर देखना। इस सोच में अधिक से अधिक लोगों के हित यानी उपयोगितावादी सिद्धांत हावी है। वर्तमान में कई सामाजिक शोध संस्थान, राजनीति और समाज वैज्ञानिक इसी तरह की सोच के हैं। ऐसे में, संसाधनों की बहुल हिस्सेदारी, संसाधनों की सांस्कृतिक राजनीति, राजनीतिक पारिस्थितिकी, आदि जैसे कई नए सिद्धांत बन रहे हैं। तीसरा, प्राकृतिक संसाधनों को निजी संपत्ति के रूप में देखा जाना। इस नजरिए का मानना है कि दूसरी तमाम जिंसों की तरह जल, जंगल, जमीन वगैरह को भी खरीदा-बेचा जा सकता है। यह सोच नवउदारवादी चिंतकों की है, जो काफी-कुछ विश्व बैंक और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के फलसफे से प्रभावित है।



संक्षेप में, जल एक साझी विरासत के तौर पर, एक दावेदारी या अधिकार के तौर पर और एक वस्तु यानी कमोडिटी के तौर पर हमारे सामने उभरता है। किस नजरिए को कितनी तरजीह दी जाए, यही जल के संकट और उसकी राजनीति की दिशा और दशा को तय करता है।

भारत में पहली जल नीति 1987 में यानी आजादी के चार दशक बाद बनी। फिर दूसरी और तीसरी नीति का निर्धारण 2002 और 2012 में किया गया। शुरू के चार दशकों में जल की बहुलता और इसके संबंध में बड़े निर्णयों- जैसे, बांध निर्माण आदि में राज्य की निर्णायक भूमिका रहने से शायद इसके लिए अलग से कोई नीति बनाने की जरूरत महसूस नहीं हुई। लेकिन, बढ़ते शहरीकरण, औद्योगीकरण और जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में जल के इर्दगिर्द न केवल नए विमर्शों ने जन्म लिया, बल्कि जल संबंधी नई नीतियां भी बनीं। नई आर्थिक नीति को अपनाने के बाद में बने दो मसविदे वास्तव में निजीकरण की ओर अग्रसर जान पड़ते हैं।

जहां 2002 की जल नीति में सिर्फ निजी क्षेत्र भागीदारी की बात शामिल थी, वहीं 2012 की नीति के में जल के मूल्य निर्धारण, जल के लेखा परीक्षण यानी बूंद-बूंद पानी का हिसाब रखने और इसके लिए नई संस्थाओं को बनाने पर जोर दिया गया। इन परिवर्तनों को नवउदारवाद के संदर्भ में देखने से जल पर हो रही राजनीति साफ होती है। इन दोनों ही नीतियों में जल को एक वस्तु और मनुष्य को उपभोक्ता बना दिया गया। सरकार की नीयत जल को आर्थिक वस्तु बना के तौर पर उभर कर आ गई।

मूल्य निर्धारण, मांग और आपूर्ति। यह शब्दावली कारोबार की है। कारोबार राज्य करे या कारपोरेट कंपनियां। कारोबार की वजह से बहुत सारी मुश्किलें पैदा हुई हैं। लेकिन, इससे अलग भी कुछ समस्याएं हैं। जैसे पेयजल की किल्लत, बढ़ता जल प्रदूषण और उससे होने वाली महामारियां। जिस तरह से विश्व बैंक जैसी संस्थाएं नवउदारवाद (जो वास्तव में निजीकरण का सुधरा हुआ नाम है) की नीति को जल के क्षेत्र में फलने-फूलने देने के लिए अवसर मुहैया कर रही हैं, वह भविष्य के लिए खतरे की घंटी है। हालांकि, नागरिक समाज पानी पर अपने अधिकार को सजग है, लेकिन असल समस्या यह है कि राज्य उसे समर्थन नहीं दे रहा है।

> **मूल्य निर्धारण, मांग और आपूर्ति। यह शब्दावली कारोबार की है। कारोबार राज्य करे या कॉरपोरेट कंपनियां। कारोबार की वजह से बहुत सारी मुश्किलें पैदा हुई हैं। लेकिन, इससे अलग भी कुछ समस्याएं हैं। जैसे पेयजल की किल्लत, बढ़ता जल प्रदूषण और उससे होने वाली महामारियां। जिस तरह से विश्व बैंक जैसी संस्थाएं नवउदारवाद (जो वास्तव में निजीकरण का सुधरा हुआ नाम है) की नीति को जल के क्षेत्र में फलने-फूलने के लिए अवसर मुहैया कर रही हैं, वह भविष्य के लिए खतरे की घंटी है।**

भारत में पानी की कहानी को लेकर तीखा अंतर्विरोध है। सरकार एक तरफ तो जल संरक्षण का दावा कर रही है। दूसरी तरफ, पीछे के दरवाजे से इसके बाजारीकरण और निजीकरण को बढ़ावा दे रही है। 'निजी क्षेत्र की भागीदारी' के नाम पर लगभग सभी राज्यों में सैकड़ों जल संबंधी पयिोजनाएं चल रही हैं। राज्य और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के साथ बाजार भी एक संस्था के रूप में जल की राजनीति में एक हिस्सेदार के तौर पर खड़ा है। उदाहारण के तौर पर जल शुद्धीकरण के मशीनों की बहुतायत और बोतलबंद पानी के चलन ने पेयजल का समीकरण ही बदल दिया है। ये सारे परिवर्तन रातोरात नहीं हुए, बल्कि एक खास तरह की सोची समझी चाल यानी बाजार को बढ़ावा देने वाली राजनीति का हिस्सा हैं।

गौरतलब है ये मशीनें सार्वजनिक संस्थाओं, निजी संस्थाओं और मध्यमवर्गीय परिवारों में लगवाई जाती हैं, जबकि इनमें अधिकांश जगहों पर सरकारें या स्थानीय निकाय स्वयं ही साफ और पेयजल की आपूर्ति करती हैं। साफ पानी को फिर शुद्ध करने की क्या जरूरत है ? क्या इसका मतलब यह निकाला जाए कि स्थानीय निकाय दूषित और अस्वच्छ पानी की आपूर्ति करती हैं ? सवाल उठता है कि क्या पेयजल सचमुच इतना दूषित है या फिर यह एक तरह का हौवा है? क्या यह मान लिया जाए कि स्थानीय निकायों आपूर्त पानी पीने योग्य नहीं है। भारत की जनसंख्या का बहुत छोटा हिस्सा ही मशीन द्वारा शुद्ध किया पानी पीता है, पर लोगों की भयजनित इच्छाओं का फायदा उठाने में बाजार माहिर है, जिसका परिणाम है कि आज पंद्रह से लेकर पच्चीस हजार रुपए तक की मशीनें बाजार में उपलब्ध हैं। समाज का गरीब वर्ग अगर दूषित जल पी रहा है तो उसके लिए किसे जिम्मेदार ठहराया जाए? यह दर्शाता है कि वर्ग की राजनीति का जल की राजनीति से सीधा संबंध है। आमदनी का बड़ा हिस्सा लोग अपनी जल की जरूरत पूरी करने के लिए खर्च करने पर बाध्य हैं? कौन व्यक्ति कहां से और कितना पानी उपभोग कर रहा है, यह उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति का सूचकांक है। यह कहना शायद अतिशयोक्ति नहीं है कि आज दिल्ली जैसे महानगरों में लोग रोजाना दूध या फल साग सब्जी से ज्यादा पानी पर खर्च करते हैं। बोतलबंद पानी मांग के ही अनुरूप उसकी कीमत में भी लगातार बढ़ोतरी हो रही है और उसकी गुणवत्ता की भी शायद ही कोई गारंटी हो ?

आज भारत की अधिकांश नदियां बेहद प्रदूषित हो चुकी हैं और उनका जल पीने के लिए तो दूर की बात है, दूसरे प्रयोगों के लिए भी सही नहीं है। आज तक किसी उद्योग को बंद करने या उन पर पाबंदी लगाने की बात सुनने को नहीं मिलती। हाल के समय में 'कारपोरेट सोशल रिस्पांसबिल्टी' (सीएसआर) के सिद्धांत ने समस्याओं को सुलझाने की बजाय और नए तरह से उलझा दिया है। इसके अनुसार व्यावसायिक संगठनों को देश के आर्थिक विकास के साथ स्थानीय समुदायों और पर्यावरण के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करना होता है। इस तरह के प्रयास में वे अपने लाभ का एक बहुत छोटा हिस्सा गरीबों की शिक्षा या स्वास्थ्य के लिए देते हैं। कई बार लोग बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा किए जा रहे कुछ सामाजिक कार्यों से ही बेहद प्रभावित हो जाते हैं। कोका कोला द्वारा चलाये जा रहे गरीब बच्चों को शिक्षित करने के प्रयास का गुणगान खूब हो रहा है, जबकि इसी कंपनी ने केरल के प्लाचीमाड़ा गांव के पानी को इस कदर प्रदूषित किया कि दस साल बाद भी वहां का भूजल पीने के लायक नहीं है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां न केवल हमारे दैनिक जीवन को प्रभावित कर रही हैं बल्कि इनके द्वारा पर्यावरण की हो रही क्षति और इनके दूरगामी प्रभाव भी अनंत हैं।

इसी तरह, के कई अन्य उदहारण जैसे नियमगिरि में आदिवासियों द्वारा वेदांता कंपनी का विरोध, विशेष आर्थिक क्षेत्र के विरुद्ध कई संघर्ष देखने को मिलते हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या की जरूरतों को पूरा करने के लिहाज से शुद्ध पेयजल की कमी है। पेयजल की समस्या भी नगरीय समाज और ग्रामीण समाज में अलग-अलग तरह से है। ग्रामीण भारत में तालाब, कुआं आदि किसी की निजी संपत्ति भले होते थे, लेकिन उन पर सभी का अधिकार होता था। मंदिरों आदि के बाहर राहगीरों के लिए पीने का पानी पहले की तुलना में काफी कम लेकिन फिर भी गाहे बगाहे देखने को मिल जाता है।

एक तरफ तो जल संरक्षण के पारंपरिक स्रोत जैसे कुएं, पोखर ग्रामीण इलाकों में भी तेजी से समाप्त हो रहे हैं। दूसरी तरफ जल उपलब्ध करने के लिए आधुनिक तंत्र जैसे जल, एटीएमए टैंकर आदि के माध्यम से शहर के कोने कोने तक पहुंचने का प्रयास भी हो रहा है। गौरतलब है कि यह जल मुफ्त में नहीं बल्कि निश्चित कीमत के बदले मुहैया कराया जा रहा है। शहरों में सैकड़ों किलोमीटर पाइपलाइन बिछाकर पानी लाया जा रहा है और ऐसे में भारी मात्रा में वित्तीय संसाधन का व्यय या अपव्यय हो रहा है। यह सब तब तक चल सकता है जब तक जल है, जब जल की उपलब्धता बेहद घट जाएगी तब क्या होगा? इन सबके बीच जल की राजनीति न केवल वृहत स्तर पर बल्कि सूक्ष्म स्तर पर भी बेहद तेजी से बदल रही है। ❑

नीर की पीर

■ प्रमोद भार्गव

देश की महत्त्वपूर्ण रेलों में 'रेल नीर' आपूर्ति से जुड़े भ्रष्टाचार के संबंध में सीबीआइ की छापेमारी के दौरान घोटाले में भी घोटाला सामने आया है। बरामद सत्ताईस करोड़ की नगद धनराशि में चार लाख रुपए नकली हैं। इसमें सीबीआइ ने आरके एसोसिएट्स और वृंदावन फूड प्रोडक्ट के मालिक श्याम बिहारी अग्रवाल और उनके पुत्र अभिषेक अग्रवाल को हिरासत में लिया है। साथ ही, भारतीय रेल यातायात सेवा - आइआरसीटीसी के अधिकारी संदीप सिलास और एमएस चालिया को भी गिरफ्तार किया गया है। ये दोनों मुख्य वाणिज्यिक अधिकारी थे। इन्होंने कैटरिंग ठेकेदार अग्रवाल से साठगांठ करके राजधानी और शताब्दी जैसी प्रमुख रेलों में रेल नीर के बजाय अनधिकृत बोतलबंद पानी और पाउच उपभोक्ताओं को बेचे। सीबीआइ ने जांच में पाया कि पहले तय था कि आइआरसीटीसी निजी कंपनियों को रेल नीर 10.50 रुपए में प्रति बोतल की दर से देगी। उन्हें यह पानी रेलों में 15 रुपए में यात्रियों को देना होगा। लेकिन, ठेकेदार और रेल अधिकारियों की मिलीभगत से गुणवत्ता की परवाह किए बिना सस्ता बोतलबंद पानी बेचा जाने लगा। इस बोतल की कीमत महज 5.70 रुपए थी। इस गोरखधंधे के चलते दस साल के भीतर ठेकेदार को करीब पांच करोड़ की काली कमाई हुई।

संविधान के अनुच्छेद-21 में प्रत्येक नागरिक को जीने के अधिकार की मान्यता दी गई है। लेकिन जीने की मूलभूत सुविधाएं क्या हों? इनके औचित्य को तय करने वाले न तो बिंदु तय किए गए और न ही उन्हें बिंदुवार परिभाषित किया गया। इसीलिए अब तक जल, भोजन, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे जीने के लिए बुनियादी वस्तुएं पूरी तरह संवैधानिक अधिकार हासिल कर लेने से वंचित हैं। 2002 में अटलबिहारी वाजपेयी सरकार ने औद्योगिक हितों को लाभ पहुंचाने वाली 'जल-नीति' बनाई थी और पेयजल के दोहन का व्यापार करने की छूट देशी और विदेशी निजी कंपनियों को दे दी गई। भारतीय रेल भी 'रेल नीर' नामक उत्पाद लेकर बाजार में आई। इस कारोबार की शुरुआत छत्तीसगढ़ से हुई। यहां शिवनाथ नदी पर देश का पहला बोतलबंद पानी का संयंत्र स्थापित किया गया। इस तरह एकतरफा कानून बनाकर मानव समूहों को जल के सामुदायिक अधिकार से अलग करने का सिलसिला चल निकला। यह सुविधा यूरोपीय संघ के दबाव में दी गई थी। पानी को विश्व व्यापार के दायरे में लाकर पिछले एक-डेढ़ दशक के भीतर एक-एक कर विकासशील देशों के जलस्रोतों को खुले दोहन के लिए इन कंपनियों के हवाले कर दिए गए। विकसित पश्चिमी देशों के लिए इसी यूरोपीय संघ ने पक्षपाती मानदंड अपनाकर ऐसे नियम-कानून बनाए कि विश्व के दूसरे देश पश्चिमी देशों में आकर पानी का कारोबार न करने पाएं।

यह संघ विकासशील देशों के जल का अधिकतम दोहन करना चाहता है, जिससे इन देशों की प्राकृतिक संपदा का जल्द से जल्द नकदीकरण कर लिया जाए। क्योंकि पानी अब केवल पेय और सिंचाई-जल मात्र नहीं रह गया है, बल्कि विश्व बाजार में 'नीला सोना' के तौर पर तब्दील हो चुका है। भारत समेत दुनिया में जिस तेजी से आबादी बढ़ रही है और जलस्रोतों के घटने के साथ उनका निजीकरण हो रहा है, उतनी ही चालाकी से पानी के लाभ का बाजार तैयार किया जा रहा है, जिससे एक बड़ी आबादी को जीवनदायी जल से वंचित कर दिया जाए और आर्थिक रूप से सक्षम व्यक्ति ही जलउपभोक्ता बन सकें।

यही कारण है कि दुनिया में पानी का कारोबार 37 हजार 500 अरब डॉलर का हो गया है। मसलन पानी की हर बूंद बिकने लगी है और हर घूंट पानी की कीमत वसूली जाने लगी है। भारत में पानी और पानी को शुद्ध करने के उपकरणों का बाजार लगातार फैल रहा है। देश में करीब पचासी लाख परिवार जल शोधित (प्यूरीफायर) उपकरणों का प्रयोग करने लगे हैं। इस बाजार पर यूरेका फोर्ब्स का कब्जा है। करीब 75 लाख घरों में इसी का इस्तेमाल किया जाता है। बीते चार साल में हिंदुस्तान यूनीलीवर ने भी करीब 15 लाख प्यूरीफायर बेचे हैं। बोतल और थैली में बंद पानी का भारत में एक हजार करोड़ का बाजार तैयार हो चुका है। इसमें हर साल 40 से 50 प्रतिशत की बढ़ोतरी हो रही है। देश में इस पानी के करीब एक सौ ब्रांड देशव्यापी हैं और बारह सौ से भी ज्यादा बंद पानी के संयंत्र लगे हुए हैं। देश का हर बड़ा कारोबारी समूह इस व्यापार में उतरने की तैयारी में है। दिग्गज कंप्युटर कंपनी माइक्रोसाफ्ट के संस्थापक बिल गेट्स भारत में ओमनी प्रोसेसर संयंत्र लगाना चाहते हैं। इस संयंत्र से दूषित मलमूत्र से पेयजल बनाया जाएगा। फिलहाल इस क्षेत्र में भारतीय उद्योगपतियों का ही बोलबाला है।



भारतीय रेल भी बोतल बंद पानी के कारोबार में शामिल है। इसकी सहायक संस्था इंडियन रेलवे कैटरिंग एंड टूरिज्म कॉरपोरेशन (आइआरसीटीसी) रेल नीर नाम से पानी का उत्पादन करती है। इसके लिए दिल्ली, पटना, चेन्नई और अमेठी सहित कई जगह संयंत्र लगे हैं। उत्तम गुणवत्ता और कीमत में कमी के कारण रेल यात्रियों के बीच यह पानी लोकप्रिय है। रेल यात्री इस पेय के प्रमुख उपभोक्ता हैं। इसके बावजूद रेल नीर घाटे में है, क्योंकि बड़े पैमाने पर घोटाले का जाल बुन दिया गया है। सीबीआइ इस घाटे को एक सुनियोजित साजिश के रूप में देख रही है। दरअसल, रेल नीर के रेल यात्री ही सबसे बड़े उपभोक्ता हैं। उन्हें भी पानी की आपूर्ति नहीं कर पाता है। इसीलिए रेलवे ने महाराष्ट्र के अंबरनाथ और तमिलनाडु के पालूर में नए जल उत्पादन संयंत्र लगाए हैं। लिहाजा निजी कंपनियों की कुटिल मंशा है कि रेल नीर को ऐन-केन-प्रकारेण घाटे के सौदे में तब्दील कराकर सरकारी क्षेत्र के इस उपक्रम को बाजार से बेदखल कर दिया जाए। ऐसा संभव होता है तो कंपनियों को रेल यात्रियों के रूप में नए उपभोक्ता मिल जाएंगे। पानी की गुणवत्ता बनाए रखने की शर्त खत्म हो जाएगी और तुलनात्मक दृष्टि से मूल्य संतुलित रखने के झंझट से भी छूट मिल जाएगी।

भारत दुनिया में भूजल का सबसे बड़ा उपभोक्ता देश है। यहां हर साल 230 घन किलोलीटर पानी धरती के गर्भ से खींचा जाता है, जो विश्व की कुल खपत के एक चौथाई से भी ज्यादा है। इस पानी की खपत साठ फीसद खेतों की सिंचाई और चालीस प्रतिशत पेयजल के रूप में होती है। इस कारण उनतीस फीसद भूजल के स्रोत अधिकतम दोहन की श्रेणी में आकर सूखने के कगार पर हैं। औद्योगिक इकाइयों के लिए पानी का बढ़ता दोहन इन स्रोतों से हालात और नाजुक बना रहा है। कई कारणों से पानी की बर्बादी भी खूब होती है। आधुनिक विकास और रहन-सहन की पश्चिमी शैली अपनाने से भी पानी बर्बाद हो रहा है। 25 से 30 लीटर पानी सुबह मंजन करते वक्त नल खुला छोड़ देने से व्यर्थ चला जाता है। 300 से 500 लीटर पानी बॉथ टब में नहाने से खर्च होता है। जबकि परंपरागत तरीके से किए स्नान में महज 25-30 लीटर पानी खर्च होता है। एक शौचालय में एक बार मल विर्सजन करने पर कम से कम दस लीटर पानी खर्च होता है। 50 से 60 लाख लीटर पानी मुंबई जैसे महानगरों में रोजाना वाहन धोने में खर्च हो जाता है। जबकि मुंबई पेयजल का संकट झेल रहा है। सत्रह से चौवालीस प्रतिशत पानी दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई, बंगलुरु और हैदराबाद जैसे महानगरों में जल प्रदायक लाइनों के वॉल्वों की खराबी से बर्बाद हो जाता है।

पेयजल की इस तरह से हो रही बर्बादी और पानी के निजीकरण पर अंकुश लगाने की बजाय योजना आयोग के पूर्व अध्यक्ष मोंटेक सिंह अहलूवालिया ने केंद्र और राज्य सरकारों को सलाह दी थी कि पानी की बर्बादी रोकने के लिए नए कानूनी उपाय जरूरी हैं, ताकि हर बूंद का दुरुपयोग रोका जा सके। लगभग इसी समय संयुक्त राष्ट ने पानी और स्वच्छता को बुनियादी मानवाधिकार घोषित करने की पहली वर्षगांठ पर संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बान की मून ने कहा कि लोगों को पानी और स्वच्छता के अधिकार मिल जाने का अर्थ यह नहीं है कि सबको पानी मुफ्त मिले। बल्कि इसका मतलब यह है कि ये सेवाएं सबको सस्ती दर पर हासिल हों। साफ है, पानी को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बाजार के हवाले कर दिए जाने की साजिश रची जा रही है। आम लोगों को गैर जागरूक ठहराकर पानी की बर्बादी का जिम्मेवार ठहराया जा रहा है। जिससे कानून बनाकर पानी के उपयोग और आपूर्ति को नियंत्रित किया जा सके। जबकि पानी की बर्बादी के लुटेरे तो कोई और ही हैं। ❑

pramod.bhargava15@gmail.com